PESQUISA –Peer Reviewed Journal ISSN-2455-0736 (Print)
www.pesquisaonline.net ISSN-2456-4052 (Online)

समकालीन हिन्दी कविता में दलित जीवन का यथार्थ

Dr. K. K. GIRISH KUMAR

Assistant Professor, Department of Hindi, Cochin University of Science and Technology

girish372@gmail.com

Abstract

भूमण्डलीकरण की शोषण नीतियों का असली भोक्ता समाज के निचले पायदान के लोग है । देशी और विदेशी पूंजीपतियों के कुटिल तंत्र से बनी आर्थिक नीतियाँ उन्हें बुरी तरह विचलित करती है। शिक्षा, स्वास्थ्य, खेती एवं सेवा उद्योग को भूमण्डलीकृत करने के कारण देश के आम आदमी अपनी ज़रूरतों को निभाने में असमर्थ हैं। शिक्षा और इलाज अब देश के धनी वर्ग के पहुँच की वस्तु बन गयी है। आदमी के पास पैसा है तो ऊँची डिग्रियाँ हासिल कर सकते हैं महँगे अस्पताल में भरती भी हो सकते हैं। नई अर्थ व्यवस्था में पूंजी का विकेन्द्रीकरण नहीं होता है। परंपरागत उद्योगों पर ताला डालकर देश के उद्योगपति शेयर बाज़ार में रुचि लेने लगे। परिणाम यह हुआ कि देश का एक वर्ग करोड़पति बन रहे हैं और समाज के सबसे बड़े पैमाने के लोग यानी हाशियेकृत वर्ग एक जून की रोटी के लिए भटकते हैं। उत्तराधुनिक साहित्य इन्हीं हाशिये में पड़े हुए वर्गों की तलाश में है । बहुलतावाद यानी बहुस्वरता उसकी खासियत है । नारी-विमर्श, दलित-विमर्श, आदिवासी-विमर्श, पारिस्थितिक-विमर्श, वृद्ध-विमर्श, बाल-विमर्श आदि इस बहुस्वरता की मिसाल है।

Main Content

आर्थिक उदारीकरण पूरे देश में घातक स्थितियाँ पैदा कर रहा है । इसने देश के आम आदमी का सुख-चैन छीन लिया है। बेरोज़गारी अपनी चरम सीमा पर पहुँच गयी है। इस प्रकार के माहौल में हाशिए कृत वर्ग खासकर दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक समाज की समस्याएँ गहरी सोच का विषय हैं । क्योंकि उदारीकरण और निजीकरण ने इनके हितों पर कुठाराघात किया है। भूमण्डलीकरण ने आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्तर पर इन्हें गुलाम बना दिया है । इसलिए आज उपेक्षित तबके - किसान, मज़दूर, दलित, आदिवासी और अल्पसंख्यक लगातार अपने अधिकारों के लिए जागरूक तथा उसे हासिल करने के संघर्ष में सक्रिय हैं । समकालीन साहित्य उनके संघर्षों का हमराही है । दलित और आदिवासी विमर्श का साहित्य इसका पुष्ट प्रमाण है।

दलित उन लोगों को कहा जाता है, जिन्हें सवर्णों द्वारा अस्पृश्य माना जाता रहा है । समाज में उसकी उपस्थिति सबसे निम्न है। उच्च वर्ग के लोग अपनी उन्नति के लिए उसका खून चूस लेते हैं और उन्हें विकसित होने का अवसर नहीं देते । दलित के अंतर्गत अनुसूचित जातियों, खानाबदोश, आदिवासियों के साथ भूमि हीन मज़दूरों और गरीब किसानों को भी सम्मिलित किया गया है । सदियों से लेकर दलित समाज सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक एवं धार्मिक शोषण का शिकार है । इसके अतिरिक्त अशिक्षा, आवास हीनता, भूख, बीमारी, छुआछूत जैसी समस्याओं से भी वे जूझ रहे हैं। दलित चेतना इन दर्दनाक हालतों से मुक्त होने की कोशिश है। आधुनिक युग में आकर शिक्षा प्राप्त अवर्णों ने अपनी बद हालत की सही जाँच की और उसे सुधारने के लिए संगठित कारवाई की। दलित साहित्य इस संगठित चेतना की

उपज है । यह क्रांति और विद्रोह का साहित्य है और अपने युग का हलफनामा भी । वह मानवीय सरोकारों और संवेदनाओं की यथार्थवादी अभिव्यक्ति है ।

सन् 1914 में सरस्वती पत्रिका में प्रकाशित हीरा डोम की 'अछूत की शिकायत' हिन्दी की पहली दलित कविता है । उसके बाद बड़ी तादाद पर दलित कविताएँ लिखी गई हैं । उन सब में हज़ारों साल के उत्पीड़न और शोषण के खिलाफ नवीन पीढ़ी का आक्रोश ही अभिव्यक्त हुआ है । आक्रोश और विद्रोह दलित कविता की पहचान है । दलित साहित्य चिंतक तेज सिंह ने कहा, "आक्रोश और विद्रोह दलित कविता की मुख्य शक्ति इसलिए बन गया क्योंकि उसे सृजनात्मक ऊर्जा उत्पीड़ित-शोषित दलित समाज में सीधे-सीधे जुड़कर मिली थी ।"[1] अर्थात दलित कविता शोषण के शिकार बने कवि का वास्तविक बयान है । लेखक अपना जीवन ही रचना की पृष्ठभूमि है । ज़िन्दगी के गहन अनुभव दलित कवि को सामाजिक मान्यताओं रूढ़ियों तथा मूल्यों की समीक्षा करने की सम्यक दृष्टि देते हैं । अपने सम्यक दृष्टिकोण से वह इतिहास और पुराण की पुन:व्याख्या कर रहा है । लम्बे समय तक उपेक्षित दलित समाज की चीख समकालीन दलित कविता की खासियत है । जिसमें दलित कवियों ने अपनी पीड़ा को खुद अभिव्यक्त किया है । अस्पृश्यता, जाति एवं वर्णगत भेदभाव, असमानता और शोषण के खिलाफ वे आवाज़ उठा रहे हैं ।

भारत की परंपरागत जाति एवं वर्ण व्यवस्था के कारण लम्बे समय से दलित असम्मान का पात्र बना रहा है । सवर्णों के लिए जाति सदैव दलितों को परस्पर बाँटने और कमज़ोर करने का एक शक्तिशाली हथियार है । इस हथियार के बल पर वे दलित एवं अपाहिज लोगों का इस्तेमाल अपनी आर्थिक स्थिति को मजबूत करने के लिए और अपनी विलासिता के लिए करते रहे । वर्ण व्यवस्था का झूठा तंत्र दिखाकर इन्हीं अपाहिजों को संगठित होने से रोक रखा । वह समाज सदियों से संताप झेलकर, पीड़ा सहकर उच्च वर्ग का शिकार बना रहा । उन्हें पूर्ण विश्वास है कि अपनी मुक्ति इस ब्राह्मणवादी विचार, वर्णाश्रम व्यवस्था को तोड़े बिना संभव ही नहीं । इसलिए ब्राह्मणवादी व्यवस्था का विरोध दलित कविता का केन्द्रीय स्वर है । दलित कवि मलखान सिंह अपनी मुक्ति इस वर्णवादी परंपरा के अंत में देखते हैं । उनका कहना है कि :-

हमारी दासता का सफर
तुम्हारे जन्म से शुरू होता है
और इसका अंत भी
तुम्हारे अंत के साथ होगा ।[2]

जाति एवं वर्ण व्यवस्था ने जिस तरह का विभाजन किया उससे चंद लोगों को विशेष अधिकार मिले । समाज के बहुत बड़े हिस्से के लोग मानवीय अधिकारों से वंचित रह गये । मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई उत्पन्न करनेवाला यह विभाजन मानवीयता का सबसे बड़ा ध्वंसन है । यह विभाजन पूर्णतः मनुष्य निर्मित है, इसका कोई व्यवस्थित आधार भी नहीं है । इस अन्याय को भोगनेवाला सचमुच समाज के निचले पायदान के लोग हैं विशेषकर दलित । सदियों से दलितों के साथ अमानवीय व्यवहार होता रहा है । मशहूर दलित साहित्यकार मोहनदास नैमीशराय ने 'फर्क तय करना है' कविता में दलित जीवन के इस हादसे को उठाया है । सिर्फ जाति के नाम पर होनेवाले यह भेदभाव कल गाँव और कस्बों तक सीमित थी । लेकिन आज वह महानगरों के जीवन को भी विचलित करने लगे हैं । दलित शोषण से संबंधित राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं की ओर यह कविता हमारा ध्यान आकर्षित करता है :-

एक ही मनुष्य जाति के होने पर भी
जातिगत संबोधनों के आधार पर / कसैले से लगनेवाले स्वर
कल तक जो गाँव और कस्बों के
परिवेश में सुनाई देते थे आज उजालों के प्रतीक / महानगरों में भी

वही जातिगत संबोधन के आधार पर कसैले से लगनेवाले स्वर
सुनाई पड़ने लगते हैं ।[3]

दलित साहित्य सामाजिक सरोकारों का ईमानदारी से युक्त अभिव्यक्ति है । उसकी ऊर्जा हज़ारों सालों से पीड़ा सहनेवाले दलित जीवन का यथार्थ है । पुराण और इतिहास में जो पात्र अस्पृश्यता, अन्याय या अधर्म के शिकार बने हैं उन्हें दलित रचनाकार विद्रोही प्रतिमान के रूप में प्रस्तुत करते हैं । शम्बूक, एकलव्य, कर्ण आदि के विरुद्ध ब्राह्मण वादी सभ्यता के अन्यायों ने दलितों में सामाजिक चेतना जगायी है । इन चरित्रों के प्रति अन्याय इसलिए हुआ कि इन्होंने ब्राह्मणवाद की तानाशाही के खिलाफ आवाज़ उठायी थी । इनसे प्रेरणा ग्रहण करके सामाजिक परिवर्तन की माँग को द्योतित करनेवाली ओमप्रकाश वाल्मीकी की कविता 'वह दिन कब आयेगा ?' :-

वह दिन कब आयेगा
बामनी नहीं जनेगी बामन
चमारी नहीं जनेगी चमार
भंगिन भी नहीं जनेगी भंगी ।
तब नहीं चुभेंगे
जातीयहीनता के दंश ।
नहीं मारा जायेगा तपस्वी शम्बूक
नहीं कटेगा एकलव्य का अंगूठा
कर्ण होगा नायक
क्या ऐसे दिन कब आएगा?[4]

दलित समाज के साथ सवर्णों द्वारा किए गए अन्याय नये नहीं हैं । पुराण काल से लेकर दलित मानवीय अधिकारों से वंचित है । शिक्षा के क्षेत्र में व्याप्त अन्याय इनमें प्रमुख है । आचार्य द्रोण से जो पीड़ा एकलव्य को सहना पड़ा था ठीक उसी प्रकार के अनुभव दलित छात्र आज भी भोग रहे हैं । सवर्ण मान्यता के अनुसार धन-धरती और शिक्षा समाज के उच्च वर्ग की संपत्ति है । यदि दलित पढ़कर अफसर बन जाए तो खेत का काम कौन करेगा..? नाली कौन साफ करेगा...? इसलिए उन्हें परास्त करने की सैकड़ों कोशिशें आज भी शैक्षणिक संस्थाओं में चालू हैं । दयानन्द बटोही की 'द्रोणाचार्य सुनें: उनकी परंपराएँ सुनें' कविता विद्यालयों से लेकर विश्वविद्यालयों तक दलित छात्रों के साथ हो रहे सामाजिक अन्याय की गहन अभिव्यक्ति है :-

मैं सिर्फ / द्रोण तुम्हारे रास्ते पर चले गुरु से कहता हूँ
अब दान में अंगूठा माँगने का साहस कोई नहीं करता
प्रैक्टिकल में फेल करता है / प्रथम अगर आता हूँ तो
छटा या सातवाँ स्थान देता है / जाति गंध टाइटिल में खोजता है
वह आत्मा और मन को बेमेल करता है ।[5]

धार्मिक भेदभाव का भी दलित शिकार है । समान धर्मानुयायी होने पर भी मंदिर प्रवेश उनके लिए मना है । इसलिए ऐसे झूठे धर्मों पर दलित कार्यकर्ता विश्वास नहीं करते । धार्मिक असमानता के चंगुल में दुःख झेलती दलित मानसिकता का आक्रोश है सूरजपाल चौहान की कविता 'क्यों विश्वास करूँ..?' :-

ISSN-2455-0736 (Print)
ISSN-2456-4052 (Online)

मैं तुम्हारे झूठे धर्म पर / करता रहा गर्व
लेकिन तुम्हारा मेरे प्रति / छिपा रहा सदैव
अपमान का भाव ही ।..... .....
फिर भला मैं / कैसे विश्वास करूँ
तुम्हारी सहिष्णुता / एवं भाईचारे की भावना पर ।[6]

दलित स्त्री की समस्याएँ भी दलित कविता में अंतर्निहित हैं । जब दलित समाज का जागरण हुआ है तो स्त्रियों का घर से निकलकर पढ़ना, लिखना व काम करना आसान हुआ है । आज की दलित स्त्री अपने समाज से एवं बाहरी समाज से जुड़ रही है । वह जातिवाद, पितृ सत्तात्मक व्यवस्था तथा आर्थिक बराबरी की लड़ाई में हिस्सेदारी करती है । वह अपने को अर्द्धांगिनी नहीं मानती बल्कि एक पूर्ण इनसान की मान्यता के लिए संघर्ष करती है । दलित कविता नारी की शक्ति को पहचान कर उसके वजूद की लड़ाई को आगे बढ़ाती है । नारी विमर्श को दलित चेतना के परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश समकालीन दलित कविता में है । प्रतिभा अहिरे की कविता 'हे दोस्त' इसका पुष्ट प्रमाण है :-

मैं नहीं मानती खुद को अर्द्धांगिनी
मैं सिर्फ एक शरीर नहीं हूँ
तुम मुझे अर्द्धांगिनी कहकर मेरा अपमान मत करो ।
मैं हूँ एक संपूर्ण शरीर स्वतंत्र मस्तिष्क
मेरे कन्धों पर और मस्तिष्क का सदुपयोग जानने वाली एक व्यक्ति हूँ
एक इंडिविजुअल ।[7]

दलित नारी तिहरे शोषण की शिकार है, पहला जाति, दूसरा वर्ग और तीसरा पितृ सत्ता का । घर और समाज का शोषण चक्र उसे कचोटता है । लेकिन पुरुष मेधा जातिवादी समाज का मनमाना शोषण सहकर वह मूक नहीं बैठती है । परंपरा को तोड़कर वह अपनी अस्मिता की रक्षा करना चाहती है । चर्चित दलित लेखिका सुशीला टाकभौरे 'विद्रोहिणी' कविता में पुरुष वर्चस्ववादी एवं ब्राह्मणवादी समाज के संकरे रास्ते से स्त्रियों को बाहर आने की बात करती है :-

माँ बाप ने पैदा किया था / गूँगा / परिवेश ने लंगड़ा बना दिया
चलती रही / निश्चित परिपाटी पर / बैसाखियों के सहारे
कितने पड़ाव आए / आज जीवन के चढ़ाव पर
बैसाखियाँ चरमराती है / अधिक बोझ से अकुलाकर
विस्फारित मन हुंकारता है / बैसाखियाँ तोड़ दूँ ।[8]

इस प्रकार दलित साहित्य अपने समय और समाज की वास्तविकता से रूपायित है । साहित्य में दलित चिंतन की ज़रूरत इसलिए है कि इसमें अपनी बातें वे ज़्यादा प्रभावी तरीके से कह सकें । साहित्य की प्रतिष्ठित धारा ने आज दलित चिंतन की शक्ति पहचान ली है । इसलिए उसने इसको नकारना शुरू कर दिया है । इसे घटिया, पोस्टरवादी कहकर हाशिए पर ढकेलने का प्रयत्न कर रहे हैं । वास्तव में दलित साहित्य का विरोध डर की उपज है । दलित लेखकों की लेखनी से सत्तासीन लोग डरते हैं । क्योंकि इनकी गद्दी इन निरीह लोगों के खुरदरे हाथों के सहारे बनी है । साहित्यिक एवं शासक वर्ग की बेचैनी को व्यक्त करते हुए दलित कवि लिखता है :-

ISSN-2455-0736 (Print)
ISSN-2456-4052 (Online)

उन्हें डर है / बंजर धरती का सीना चीर कर
अन्न उगा देनेवाले साँवले खुरदरे हाथ
उतनी दक्षता से जुड़ जाएंगे / वर्जित क्षेत्र में भी
जहाँ अभी तक लगा था उनके लिए
नो-एंटरी का बोर्ड ।[9]

दलित लेखक जयप्रकाश कर्दम के विचार में कलाकार की कलम दो तरह की होती है : एक सनातनी कलम और दूसरी दलित कलम । सनातनी कलम परंपरावादी साहित्य का है । वह खलनायकों को नायक घोषित करता है, दलितों को शिक्षा-धन-धरती से वंचित करके झूठा इतिहास लिख दिया करता है । दलित कलम इस सनातन कलम के खिलाफ अपने पैरों पर खड़ी हो गयी है और अपनी ताकत के बल पर समाज का सत्य लिखने लग गयी है । दलित कलम आक्रोश के साथ सनातन साहित्य का मुकाबला करती है । मोहन दास नैमिशराय की कविता 'झाड़ू और कलम' परंपरागत साहित्य पर दलित साहित्य के प्रहार को व्यक्त करती है । अपने लिए वर्जित प्रदेश में दलितों के पदार्पण से परंपरा के सवर्ण महल हिलने लगे हैं । दलित अब हाथ में झाड़ू के बदले कलम लेकर परंपरा के इन प्रतिमानों का जीर्णोद्धार कर रहा है :-

कल मेरे हाथ में झाड़ू था / आज कलम
कल झाड़ू से मैं तुम्हारी गन्दगी हटाता था
आज कलम से / मैं तुम्हारे भीतर की गन्दगी धोऊँगा.....
तुमने गन्दगी फैलाने के लिए
वेद / पुराण / मनुस्मृति का सहारा लिया
कल उन्हें जलाने का / मुझे अधिकार न था
आज शब्दों की आँच से / मैं उन्हें जलाऊँगा ।[10]

दलित साहित्य की प्रासंगिकता इसलिए है कि उनके जीवनानुभव दूसरे लोग जान सकें ।उससे नई मानवीय चेतना रूपायित करें । जनातांत्रिक मूल्यों की स्थापना उसका वास्तविक मकसद है । दलित कविता जनता से जुड़कर जनभाषा में अपनी बात करती है । दलित कवि ब्राह्मणवादी परंपराओं और विचारों का समर्थन करनेवाली देवभाषा का अस्वीकार करता है । जनभाषा का समर्थन वे इसलिए करते हैं कि देवभाषा बोलने से मिली सज़ा की दहशत भरी यादें अब भी उनके दिलों में जीवंत है । अतः प्रतिरोध की भावना से वे अपनी बात अपनी भाषा में करते हैं । जयप्रकाश कर्दम की कविता 'जन भाषा में बतियाओ' भाषिक स्तर की अलग पहचान को समझाने में समर्थ है :-

उच्चारण करने मात्र से / काटी गयी है मेरी जिह्वा
फोड़ी गयी है / मेरी आँखें
गर्म सलाखों से ।[11]

कहने का मतलब यह हुआ कि समकालीन दलित कविता अपने समय को तथा अपने जीवन यथार्थ को बहुत ही ईमानदारी के साथ अभिव्यक्त कर रही है । जनवादी-लोकतांत्रिक मूल्यों की स्थापना और मानवाधिकारों की रक्षा उसका लक्ष्य है । दलित समाज का खून चूसने वाली पूँजीवादी, सामंतवादी एवं बाज़ारवादी ताकतों की वास्तविक तस्वीर उजागर करते हुए वह अपना प्रतिरोध भी जताती है । जीवन के कटु अनुभवों को यथार्थवादी ढंग से प्रस्तुत करके दलित लेखक अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता निभा रहे हैं । संक्षेप में दलित साहित्य दलितों के स्वत्व बोध का विस्तार है । शोषण के विभिन्न पहलुओं का वास्तविक चित्र इसके जरिए उजागर हो उठे हैं । और वे यह भी स्पष्टतः कह रहे हैं कि हम-तुम में कोई अंतर नहीं जैसे

आप लोग जीते हैं वैसे ही जीने का अधिकार हमें भी हैं । लेखन उन्हें इस समता-स्थापन के लक्ष्य का एक औजार मात्र है ।

REFERENCES

1. सं. जयप्रकाश कर्दम - दलित साहित्य पृ. 36
2. सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ पृ. 48
3. सं. डॉ. एन. सिंह - चेतना के स्वर पृ. 5
4. सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ पृ.66,67
5. सं. डॉ. एन. सिंह - चेतना के स्वर पृ. 55
6. सूरजपाल चौहान - क्यों विश्वास करूँ पृ. 26
7. सं. सर्वेश कुमार मौर्य - यथार्थवाद और हिन्दी दलित साहित्य पृ.108
8. सं. कँवल भारती - दलित निर्वाचित कविताएँ पृ.142,143
9. वही पृ. 68
10. वही पृ. 111,112
11. सं. जयप्रकाश कर्दम - दलित साहित्य (वार्षिकी-2002) पृ.39